P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-4* ISSUE-5*January-2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

भारतीय नारी का अस्मिता संघर्ष–तब और अब

मनीषा भदौरिया
प्रवक्ता,
गृहविज्ञान विभाग,
रा0 क0 व0 मा0 वि0,
घामड़ौज,गुरुग्राम,
हरियाणा

सारांश

सैद्धांतिक रूप से हम सभी यह मानते हैं कि नारी किसी भी मामले में पुरुष से कम नहीं है,किंतु आज भी इस पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था में यह एक सिद्धांत ही है, क्योंकि प्राचीन काल से लेकर आज भी नारी अपनी अस्मिता को रेखांकित करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील है। हमारा समाज नारी और पुरुष समानता के बड़े–बड़े दावे तो करता है, किंतु आये दिन हम रोजमर्रा की जिंदगी में इन दावों की धज्जियाँ उड़ती हुई देखते हैं। प्राचीन समय में जहाँ एक ओर नारी को दुर्गा, काली के रूप में पूजनीय माना जाता था, वहीं दूसरी ओर बोझ पराया धन, अबला, असहाय की उपमाएँ देकर उसके संपूर्ण अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगा दिया जाता था। नारी की विडम्बनाओं के प्रति सहानुभूति तथा उसकी स्थिति सुधार का आह्वान नवजागरण काल में हम स्पष्ट रूप से देख पाते हैं। इस काल में महात्मा ज्योतिबा फुले, उनकी पत्नी सावित्री देवी फुले तथा पंडिता रमा बाई आदि के नारी जागरण के लिए किए गये प्रयास नारी अस्मिता के संघर्ष में मील के पत्थर कहे जा सकते हैं। इस प्रकार भारतीय नवजागरण को नारी विमर्श की अपरिहार्य पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। यू ंतो आजादी मिलने के बाद भारत सरकार ने भी नारी कल्याण की आवश्यकता को महसूस करते हुए अनेकों कार्यक्रमों के माध्यम से नारी की उन्नति के प्रयास किए, किन्तु ये प्रयास सदियों से चली आ रही नारी की दयनीय दशा को सुधारने के लिए नाकाफी थी। फिर वैश्वीकरण का दौर आया जिसमें बाजारवाद से मंत्र–मुग्ध नारी खरीदार तथा माल दोनों की भूमिका का निर्वाह करती हुई दिखाई देती है। इस दौर में स्त्री पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था की बेड़ियों को तोड़ती दिखती है, किंतु बाजारवाद की गिरफ्त में आकर वह स्वयं एक जिन्स के रूप में कैद हो जाती है। शिक्षित और सम्पन्न वर्ग की महिलाएं आज अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पुरुषों पर आश्रित नहीं है लेकिन दूसरी ओर निर्धन और अशिक्षित वर्ग की महिलाएं हाशिए से परे खड़ी खुद को ठगा महसूस करती हैं। यदि वास्तव में हमें नारी मुक्ति के वास्तविक उद्देश्यों कों प्राप्त करना है तो इन दोनों वर्गों की महिलाओं के बीच फैली असमानता की इस दूरी को पाटना होगा। इनके बीच सार्थक संवाद की पहल करनी होगी, तभी महिला समाज अपनी नियति को मुक्ति के सुनहरे अक्षरों से लिखने में सफल हो पाएगा।

मुख्य शब्द : नारी अस्मिता, विमर्श, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, नवजागरण, वैश्वीकरण, बाजारवाद, जिन्स

प्रस्तावना

नारी अस्मिता का संघर्ष नारी जिजीविषा की सतत् यात्रा

आज के दौर में राष्ट्रीय और सामाजिक दृष्टि से जिन परिवर्तनों को रेखांकित किया गया है उनमें नारी की दशा ओर दिशा संबंधी बदलाव अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से नारी की स्थिति के विहंगावलोकन से हम आज की नारी के बदलते स्वरूप को सार्थक रूप से समझ सकते हैं। हमने प्रस्तुत शोध–पत्र में नारी–विमर्श का आशय स्पष्ट करते हुए उसको ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में डालकर देखने का प्रयास किया है और नारी की स्थिति को लेकर अतीत से वर्तमान तक की यात्रा करते हुए उसकी दशा और दिशा को समझने का प्रयत्न किया है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था के निरंतर हस्तपेक्षों के बावजूद आधुनिक युग तक आते–आते नारी की अदम्य संकल्प शक्ति ने यह सिद्ध कर दिया है कि नारी किसी भी दृष्टि से पुरुष की तुलना में कमतर नहीं है। किंतु इसके बावजूद यह भी एक वास्तविकता है कि नारी और पुरुष की समानता के सारे दावों के बावजूद नारी को आज भी अपनी अस्मिता को रेखांकित करने के लिए निरंतर प्रयास करने पड़ते हैं और जिस अनुपात में हमें ये प्रयास समाज में दीख पड़ते

हैं उसी अनुपात में नारी विमर्श की प्रासंगिकता बनी रहती है। यदि हम संगतरूप से स्त्री विमर्श को परिभाषित करें तो कहना होगा ''पुरुष वर्चस्ववादी व्यवस्था में स्त्री के अधिकारों और उनकी अस्मिता की बात करना और अपने अधिकारों को पाने हेतु स्त्री विषयक चिंतन ही स्त्री विमर्श है जिसमें स्त्री के अधिकार, उसकी अस्मिता और संघर्षों के विषय में, उसके जीवन के अनेक पहलुओं पर विचार–विमर्श किया जाता है।''[1]

अंग्रेजी में इसके लिए feminism शब्द का प्रयोग किया जाता है। जिसका अर्थ है "the advocacy of woman rights on the ground of equality of sex"[2] Cambridge International Dictionary के अनुसार इसका संबंध स्त्री के उस विश्वास से है जो समान अधिकारों और अवसरों की दृष्टि से पुरूष के वर्चस्व को अस्वीकार करता है।

"Feminism the belief that woman should be allowed some rights, power and chances as men and be treated in the same way on the set of activities intended to achieve this state."[3]

दरअसल स्त्री–वाद या स्त्री विमर्श पूर्णतः विरोध या संघर्ष की मुद्रा में ही संपन्न नहीं होता बल्कि एक विशेष संतुलन के साथ पुरुष वर्ग के सामने नारी को अपनी अस्मिता रेखांकित करनी होती है। '' यह एक ऐसी लड़ाई है जिसमें सत्ता का हस्तांतरण उतना महत्त्वपूर्ण मुद्दा नहीं जितना दृष्टियों और व्यक्तियों के शांतिपूर्ण सहअस्तित्व, सामंजस्य और अधिकार कर्त्तव्यों का सम्यक आवंटन।''[4]

स्त्री चिंतन को प्रायः पुरुष के आत्यान्तिक विरोध में खड़ा किया जाता है। यह मान लिया जाता है कि पुरुष के विरोध में नारी जो कुछ करती है, जो कुछ सोचती है वह सब नारी विमर्श है। ऐसा प्रतीत होता है कि पुरुष की सत्ता को चुनौती देना ही और उसका विरोध करना ही जैसे नारी विमर्श की केन्द्रीय धुरी है। नारी विमर्श एक स्तर पर जहाँ संवेदनशील व्यक्तियों में नारी के प्रति व्यापक मानवीय सहानुभूति जगाता है तो दूसरी ओर पुरुष वर्चस्व की तर्कहीन अवधारणा को – पितृसत्तात्मक व्यवस्था के मिथको को तोड़ने का कार्य करता है। इस दृष्टि से स्त्री विमर्श विरोध और सामंजस्य के संतुलन को विशेष महत्त्व देता है।

प्राचीन काल में नारी का अस्मिता संघर्ष

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि स्त्री विमर्श के केन्द्र में स्त्री होती हैं और स्त्री विमर्श की अर्थवत्ता इसी में है कि वह नारी को संपूर्णता से देख और समझ सके यदि हम स्त्री के संपूर्ण व्यक्तित्त्व और समग्र अस्मिता को केन्द्र मान लेते हैं तो यह स्त्री विमर्श के सैद्धांतिक पक्ष से आगे बढ़कर रचनात्मक दिशा की ओर उन्मुख करता हैं। एक प्रकार से यह नारी को धुरी मानकर परम्परा से आधुनिकता की ओर उन्मुख होना हैं। विद्वानों ने परम्परा के स्वरूप निर्धारण से संबंधित बहुत से विवादों को जन्म दिया है। पश्चिम के बहुत से विद्वान यह मानते हैं कि परम्परा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है। परन्तु इलियट इसे ऐतिहासिक दृष्टि से व्याख्यायित करते हुए मनुष्य के द्वारा इसे अर्जित किये जाने को रेखांकित करता है। सच तो यह है कि परम्परा हमारी धमनियों में रक्त की तरह प्रवाहित होती है और हमारे अचेतन मानस को बहुत गहरे में प्रभावित करती है। यहाँ यह उल्लेख हम इसलिए कर रहे हैं कि प्राचीन युग में नारी को लेकर दो अतिवादी दृष्टिकोण विकसित हुए। एक दृष्टिकोण नारी की अस्मिता पर सीधे–सीधे आघात करता हुआ उसे पूर्णतः पुरुष पर आश्रित मान लेता है तो दूसरी ओर उसको पूजनीय बनाने की कोशिश भी की जाती है। मनुस्मृति में उसको किसी भी आयु में स्वतंत्र होने का अधिकार नहीं दिया गया है।

''बालया वा युवत्या वृद्धया वापि योषिता।
न स्वातंत्र्येण कर्तव्यं किंचितकार्य गृह व्यक्ति।।''[5]

यही नहीं उसे अपने पति के विषय में भी कुछ कहने का अधिकार नहीं हैं। पति कैसा भी हो वह उसके लिए देवतुल्य होता है। वस्तुतः हमारे परिवारों में यह रूढ़ि आज तक अपना स्थान बनाए हुए है कि लड़की माता–पिता के परिवार का अंग नहीं वह 'पराया धन' है, जिसे उसके ससुराल विदा करने के बाद उनके सभी कत्तर्व्य उसके प्रति खत्म हो जाते हैं। यह तो प्राचीन युग में नारी के प्रति अवमूल्यन परक अतिवादी दृष्टिकोण है। दूसरी ओर नारी को शब्दाडंबर के माध्यम से सम्मान के शिखर पर बिठाने की बात कही गई है।'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'।

प्राचीन युग में नारी के वैशिष्ट्य को लेकर एक चरित्र की चर्चा प्रायः की जाती है – गार्गी के चरित्र की। गार्गी वह तेजस्वी महिला है जो पहली बार उस समय के महान ऋषि और चिंतक याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ करती है। इस प्रसंग में यह मान लिया जाता है कि नारी को प्राचीन युग में विद्वानों के समक्ष शास्त्रार्थ करने का अवसर भी प्राप्त था। किन्तु जब गार्गी याज्ञवल्क्य से निरन्तर तर्क और प्रश्न करती है तो याज्ञवल्क्य क्रोधित होकर उसे चेतावनी देते हैं –

गार्गी माति प्राक्षीर्मा ते मूर्धान्यपतत .....[6]

अर्थात् अगर तू अधिक तर्क करेगी तो तेरा सिर धड़ से अलग होकर गिर पड़ेगा। वास्तव में नारी की स्थिति पर इससे बढ़कर व्यंग्य और क्या होगा कि तर्क करती हुई प्रश्नों से एक विद्वान ऋषि को हतप्रभ करती हुई नारी को किस प्रकार उसकी सीमाओं का ज्ञान कराया जाता है। किंतु इसके बाद महाभारत की द्रोपदी सचमुच अपने ढ़ंग से पुरुष वर्चस्व को गंभीर चुनौती देती है।

''अपने चीरहरण के पहले धिक्कार और ललकार की भाषा भी बोलती है। दुःशासन के रक्त से अपने बालों को श्रृंगार करती है। अश्लील इशारे करने वाले दुर्योधन की जांघ तुड़वाती है और सास कुंती द्वारा पाँच पति थोप दिये जाने पर भी प्रेम सिर्फ अर्जुन से करती है।''[7]

इसमें कोई संदेह नहीं कि प्राचीनकाल में नारी अपने ढ़ंग से पुरुषवर्चस्व वादी व्यवस्था से संघर्ष करते हुए अपनी अस्मिता को रेखांकित करने का प्रयास कर रही थी किंतु इसके बावजूद हमारी सामाजिक व्यवस्था में नारी को पुरुष के समकक्ष स्वीकार्यता अभी संभव नहीं हो पायी थी। किंतु समाज की नदी में स्त्री अस्मिता की खदबदाहट को प्राचीनकाल में स्पष्ट रूप से देखा और महसूस किया जा सकता है।

भारतीय नारी के लिए यदि कोई काल सबसे अधिक विडम्बनापूर्ण रहा तो वह मध्यकाल था। दरअसल मध्यकाल शब्द कालवाचक तो है ही उसके पीछे बहुत से निहितार्थ छिपे हुए हैं। दरअसल मध्यकाल में परम्परा और रुढ़ि दोनों ही गड्ड–मड्ड हो जाते हैं और समाज में प्रगति के सारे मार्ग अवरूद्ध हो जाते हैं क्योंकि इस दौर में मुसलमानों के अनेक आक्रमण हुए और मुसलमानों ने देश को इस्लाम की छाया से आक्रान्त करना आरम्भ कर दिया था। इसलिए हिन्दुओं ने सुरक्षात्मक नीति को स्वीकार किया इस सुरक्षात्मक नीति का सबसे दुखद और भयावह प्रभाव नारियों पर पड़ा। पर्दा प्रथा, बाल–विवाह, लिंग भेद, दहेज प्रथा आदि ने नारी की अस्मिता को जैसे खरोंच कर रख दिया था। एक और कबीर नारी को माया मानकर उसका तिरस्कार कर रहे थे तो दूसरी ओर तुलसी नारी के स्वभाव में विद्यमान अवगुणों को गिना रहे थे। सिद्धांत रूप में नारी का अतिवादी अधिमूल्यन अवश्य हुआ किन्तु समग्रता में यह पूरी तरह से स्पष्ट है कि नारी पूरी तरह से समाज के हाशिये पर ढ़केल दी गई थी। समूचे मध्यकाल में पुरुष वर्चस्व की सारी परम्पराओं को केवल एक महिला अपनी कृष्ण भक्ति के बल पर चुनौती दे रही थी। और वह थी मीरा। मीरा ने अपने साँवरे कृष्ण को रिझाने के लिए संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह किया। जिस लोकलाज के डर से नारी पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था के अत्याचार सहती रहती है उसी लोकलाज को तिलांजलि देकर मीरा ने कृष्ण के प्रति अपने संपूर्ण समर्पण की घोषणा कर दी।

''संतन ढ़िंग बैठि–बैठि लोकलाज खोई,
अब तो बेलि फैलि गई क्या करि है कोई''[8]

कृष्ण के मोहक स्वरूप पर मीरा ही नहीं रिझी बल्कि मुसलमान कवयित्री ताज भी कृष्ण के आकर्षण से बच नहीं पाई –

''नन्द के कुमार कुर्बान तेरी सूरत पे
हौं तो तुरकानी हिन्दुआनीं ह्वै रहूँगी मैं''[9]

वस्तुतः मध्यकाल से प्रभावित भारतीय समाज ने नारी को उपभोग की वस्तु बना दिया। घर की चहारदिवारी के बाहर न उसकी कोई स्थिति थी न पहचान। मध्यकाल की बहुत सी रूढ़ियों और जड़ताओं को भारतीय पितृसत्तात्मक समाज ने इतनी गइराई से स्वयं में आत्मसात किया कि उसकी धमक कहीं न कहीं हमारे समाज में आज भी मौजूद है। यही कारण है कि आज भी नारी विमर्श के प्रतिरोध में मध्यकाल कहीं ना कहीं भी मौजूद है।

भारतीय नवजागरण और नारी अस्मिता

भारतीय समाज में उन्नीसवीं शताब्दी का विशिष्ट स्थान है। यही वह दौर है जब यह देश मध्यकालीनता से आधुनिकता की ओर प्रस्थान करता है। 1757 में प्लासी के युद्ध में शिराजुद्दौला की पराजय के बाद भारत का भविष्य सुनिश्चित हो गया था। भारत की नियति में विधाता ने यह लिख दिया था कि सामंतवादी शक्तियों पर ब्रिटिश उपनिवेशवाद का वर्चस्व शताब्दियों तक बना रहेगा। यद्यपि अंग्रेजों ने शिक्षा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी को अपने औपनिवेशिक हितों के लिए इस्तेमाल किया किंतु भारतीयों को भी निश्चय ही इसका लाभ पहुँचा एक ओर अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार ने भारतीय युवकों को अपनी परम्परा के पुर्नपाठ का अवसर दिया– स्थापित परम्पराओं की नयी व्याख्या करने का पथ प्रशस्त किया वहीं दूसरी ओर समाज में व्याप्त कुरीतियों और रूढ़ियों के विरोध की क्षमता भी प्रदान की। रेल, मुद्रण यंत्रों के उपयोग, यातायात के साधनों का नवीनीकरण– भारतीयों ने इन्हे बहुत उत्साह से ग्रहण किया। मुद्रण यंत्रों के प्रसार से पढे–लिखों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुई। और धीरे–धीरे देश में सामाजिक जागृति का वातावरण बना। यह भारतीय नवजागरण का दौर था। ''नवजागरण का जमाना सभ्यताओं की टकराहट का न होकर सभ्यताओं के आत्मनिरीक्षण का था। 19वीं सदी के भारतीय समाजों में एक ऐसी वैचारिक उथल–पुथल शुरु हो गई, जिसने सैंकड़ों सालों की कूपमण्डूकता, भेदभाव और धार्मिक असहिष्णुता की जड़ें खोदनी शुरू कर दी। वह सांस्कृतिक आधुनिकता का जमाना था। अंग्रेजी राज के औपनिवेशिक अवरोधों के बावजूद वह समय ऐसा था, जब आधुनिकता के राष्ट्रीय शक्ति से भरे अनेकों महाख्यान जन्म ले रहे थे।''[10] ऐसे समय मे स्त्री मुक्ति का मामला अन्य सामाजिक सुधारों की अपेक्षा जटिल था। क्योंकि भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति अवमूल्यन और अधिमूल्यन दोनों ही दृष्टियों से अतिवादी है। इसलिये भारतीय नवजागरण में स्त्री को विडम्बनाओं के प्रति सहानुभूति और उसकी स्थिति सुधार का आह्वान– भारतीय नवजागरण का नारी को लेकर समाज सुधार यहीं तक सीमित रहा। ''स्त्री की धार्मिक बंधनों से आजादी खासकर भारत में एक कठिन मामला है। एक पितृसत्तात्मक समाज में आदर्शवादी स्तर पर स्त्री की पूजा की बात की जाती है। पर उसका वास्तविक दर्जा बंधुआ मजदूर से ज्यादा नहीं होता। 19वीं सदी में स्त्री के संदर्भ में सामाजिक सुधार का मामला उसके प्रति की जा रही कुछ बड़ी क्रूरताओं के विरोध तक सीमित है।''[11] यद्यपि ईश्वरचंद्र विधासागर ने स्वयं अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद विधवा से विवाह करके नारी सुधार का एक रचनात्मक उदाहरण प्रस्तुत किया। किंतु यह मानना होगा कि भारतीय नवजागरण में नारी को लेकर वैचारिक अथवा भावनात्मक सहानुभूति ही अधिक है। बंकिम ने इस संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है–''तुम लोग सोचते हो पति की मृत्यु होते ही स्त्रियाँ पत्थर बन जाती हैं, दुःख और कष्ट का अनुभव करने की क्षमता समाप्त हो जाती है? दुःख, दुःख ओर यंत्रणा, यंत्रणा नहीं लगती। इस देश के पुरुष हृदयहीन हैं, उनमें न दया है, न धर्म की चिंता है और न ही न्याय अन्याय का बोध। हित अहित का भी बोध नहीं है। केवल लोकाचार की रक्षा ही उनका प्रधान कर्म है, और यही परम धर्म है। फिर कभी इस देश भारतवर्ष में हतभाग्य अबला जाति का जन्म न हो।''[12] निःसन्देह नवजागरण के पुरोधाओं की नारी के प्रति सहानुभूति निश्छल है, वास्तविक है और वह मन को स्पर्श भी करती है। किंतु उन्होने नारी के समर्थन में कोई ऐसा क्रांतिकारी आंदोलन नहीं उठाया जिससे नारी समाज जुड़ पाता। नारी समाज को संगठित कर आंदोलन चलाने का श्रेय ज्योतिबा फुले और उनकी पत्नी सावित्री देवी फुले को जाता है। फुले दंपति ने अपना संपूर्ण जीवन नारी शिक्षा और नारी

जागरण के लिये समर्पित कर दिया। ''ज्योतिबा ने स्त्री समानता की गुहार लगाने वाली नयी विवाह विधि बनाई थी। बाल विवाह के विरोधी तो वे थे ही, लेकिन कन्या की सम्मति के बिना विवाह न रचने के पक्ष में भी थे। वे चाहते थे कि विवाह विधि में पुरुष प्रधान संस्कृति के समर्थक और स्त्री को गुलामगीरी सिद्ध करने वाले जितने मंत्र है, वे सारे निकाल दिये जाये। उन्होने ऐसे मराठी मंत्रों की रचना की जिन्हे वर वधू आसानी से समझ सकें।''[13] इसी क्रम में पंडिता रमा बाई का नाम लेना बहुत आवश्यक है। रमा बाई ने अपना पूरा जीवन नारी का स्तर ऊँचा उठाने के लिए समर्पित कर दिया। उन्होने घोषणा की ''मैं आजीवन इस देश में स्त्रियों की समुचित स्थिति के लिए वकालत करना और इसके लिए कार्य करना अपना दायित्व समझती हूँ।''[14] समग्रतः कहा जा सकता है कि भारतीय नवजागरण में पहली बार वैदिक युग के बाद भारतीय नारी के व्यक्तित्व को सहानुभूति और आदर दिया गया। समाज में अब यह माना जाने लगा कि नारी की स्थिति के सुधार के बिना देश ओर समाज की प्रगति संभव नहीं है। भारतेंदु, बंकिम, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महात्मा ज्योतिबा फुले, सावित्री देवी फुले आदि ने नारी की भयावह दशा का निरुपण करते हुए उसके उद्धार के लिए अनेकों दृष्टियों से रचनात्मक प्रयास किये। यही कारण है कि भारतीय नवजागरण को नारी विमर्श की अपरिहार्य पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार किया जाता है।

स्वात्त्र्योत्तर युग में नारी के अस्मिता संघर्ष का स्वरूप

आज़ादी मिलने के बाद पहली बार नारी कल्याण की आवश्यकता को भारत सरकार ने गहराई से महसूस किया। पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत नारी की समुन्नति के लिए अनेक कार्यक्रम आरंभ किये गये। विशेषरूप से शिक्षा, परिवार कल्याण आदि पर विशेष बल दिया गया। इसमें कोई संदेह नहीं कि सरकारी योजनाओं के कार्यान्वयन से महिलाओं की दशा में एक सीमा तक सुधार हुआ किंतु नारी की अस्मिता उसकी दशा और दिशा पर मूलगत दृष्टि से सातवें दशक में विचार किया गया। निश्चय ही इस विमर्श को पश्चिम ने बहुत हद तक प्रेरित और प्रभावित किया। फ्रांस की क्रांति ने इस विमर्श को बहुत गहराई तक प्रभावित किया। स्त्रियों को समान अधिकार देने को किसी भी समतावादी सामाजिक दर्शन की कसौटी माना गया। ''कोई भी समतावादी सामाजिक दर्शन तब तक वास्तविक अर्थों में समतावादी नहीं हो सकता जब तक कि वह स्त्रियों को समान अधिकार और अवसर देने तथा उनकी हिफाज़त करने की हिमायत नहीं करता।''[15] 20वीं शताब्दी के आते–आते जॉन स्टुअर्ट मिल ने औरतों की दासत्व यातना पर मार्मिक टिप्पणी करते हुए लिखा– ''कोई भी दास इस हद तक और इतने गहन और पूर्ण अर्थों में दास नहीं होता जितना पत्नी। मालिक के निजी दास के अतिरिक्त कोई भी दास चौबीस घण्टे दास नहीं होते। सभी पुरुष अपनी निकटतम संबंधी महिला में एक जबरन बनाए दास की नहीं बल्कि स्वेच्छा से बने दास की इच्छा रखते हैं। स्त्रियों के मालिक साधारण आज्ञाकारिता से कुछ अधिक चाहते हैं।''[16] भविष्य में स्त्री विमर्श की दिशा का संकेत करते हुए जानी मानी विमर्शकार सीमोन द बोउवार ने लिखा–''स्त्री को बाध्य किया जाए कि वह परजीवी न होकर अपने पैरों पर खड़ी हो। विवाह दो व्यक्तियों के बीच स्वतंत्र अनुबंध हो, जिसे स्वेच्छा से तोड़ा जा सके, समाज स्त्री को ऐच्छिक मातृत्व का हक दे ताकि गर्भ निरोध एवं गर्भपात को वैध बनाया जा सके तथा विवाहेतर संतान नाजायज न कहलाए, उनका समानाधिकार हो ताकि बच्चों का भार राज्य संभाले, बिना उन बच्चों को मां की कोख से छीने।''[17]

वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में नारी अस्मिता की बदलती अवधारणा

नवें दशक के अंत तक आते–आते भारत वैश्वीकरण की दिशा में पूरी तरह अग्रसर हो गया। विश्व व्यापार संगठन के निर्देशों के अनुसार भारत की अर्थव्यवस्था संचालित की जाने लगी। इस वैश्वीकारण की कोख से उपजा बाज़ारवाद इस दौर में भारतीय समाज को महत्त्वपर्ण रूप से प्रभावित कर रहा था। इस बाज़ार में स्त्रियों की भूमिका खरीदार और माल दोनों की तरह रही। एक ओर वे बाज़ार के उत्पादन की बहुत बड़ी उपभोक्ता है और दूसरी बाजार उनका उपयोग माल के विज्ञापन के रूप में करता हुआ अंततः उसे एक Commodity में बदल देता है। यह पर नारी श्रम का संदर्भ आता है है और यही एक कटु वास्तविकता है कि पुरुष श्रम की तुलना में स्त्री श्रम न केवल उपेक्षा का शिकार होता है बल्कि उसका मनचाहा उपयोग भी किया जाता है। ''जरुरत पर स्त्री श्रम को खंगाला जाता है, उसे सुविधानुसार नियुक्त किया जाता है और सुविधानुसार फेंक दिया जाता है। इसी कारण स्त्रियां भूमण्डलीकृत उद्योग व्यवस्था में नियुक्त होते हुए भी एक आज्ञाकारी और सस्ते श्रम की कोटि का ही प्रतिनिधित्व कर रही है । जिसका श्रम सस्ता होगा, वह पितृसत्तात्मक व्यवस्था से कैसे मोल–भाव कर पाएगा। यह गहरे समाज शास्त्रीय अध्ययन का विषय होना चाहिए।''[18] यह एक दुःखद आश्चर्य का विषय है कि वैश्वीकरण के इस दौर में यौन व्यापार भयावह रूप में फल–फूल रहा है। स्थिति यह है कि बहुत से एशियाई देशो की अर्थव्यवस्था में यह यौन व्यापार महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। निश्चय ही सैक्स वर्कर का जीवन स्तर ऊँचा उठा है। वे वातानुकूलित कमरों में रहती हैं, उन्हे अच्छा भोजन उपलब्ध है और वे उन्नत संचार व्यवस्था का उपयोग भी करती हैं किन्तु मानसिक रूप से वे जिस तनाव से गुजरती है वे पारम्परिक रूप से अभी मौजूद है उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया है।

प्रश्न यह है कि अन्ततः महिला परिवार को किस रूप में ग्रहण करती है। ऐसा नहीं है कि इस ग्लोबल संस्कृति में परिवार पूरी तरह से समाप्त हो जांएगे क्योंकि जब तक क्रिया और प्रतिक्रिया के लिए अपने जीने और होने के लिए एक आदमी को दूसरे आदमी की आवश्यकता होगी तक तक परिवार की सत्ता ही बनी रहेगी। हाँ, इसमें कोई संदेह नहीं कि वह परिवार एक नई परिभाषा और व्यवस्था को रेखांकित करेगा। निश्चय ही इस बाजारवाद के दौर में स्त्री की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। महानगरो की जो महिलाएँ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हैं वे इस अवधारणा में विश्वास नहीं रखती कि परिवार पुरुष चलाता है। उनमें इतनी क्षमता

व योग्यता है कि वे परिवार को अपनी शर्तों पर चला सके। नारी के लिए पुरुष अब इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है क्योंकि वह अपनी सभी जिम्मेदारियो को पुरुष की भांति पूरा करने में सक्षम हैं और उन्हे आनंद और सुख प्राप्त करने के लिए किसी पारम्परिक व्यवस्था की दरकार नहीं है। पुरुष नारी को अब भी एक आकर्षक देह के रूप में देखता है वह उसे अपनी कल्पना के रंग में रंगना चाहता है इसलिए नारी उसकी साथी कम कामनापूर्ति का साधन अधिक है। निः संदेह इस ग्लोबल दौर में नारी की पहचान एक नए रूप में देखने को मिलती है। ''सूचना के संसार में स्त्री का भी प्रवेश हो चुका है। सामाजिक आंदोलनों को वह जन्म दे चुकी है । पितृसत्तात्मक परिवार के नियमों और आदेशों के अंतर्गत दमित होने, घुटने टेकने और आहुति देने को स्त्री तैयार नहीं है, अतः पारिवारिक जीवन में व्यक्तिकरण की माँग के साथ ही स्त्री यौन दमन से मुक्ति चाहती है। ये माँग एक दूसरे से गुंथी हुई है।''[19] दूसरी ओर वह बाज़ार में एक महत्त्वपूर्ण उपभोक्ता का निर्वाह भी कर रही है। महानगरों में ये सम्पन्न महिलाएं यदि कुछ खरीद रहीं है तो इनमें आत्मप्रदर्शन की भावना प्रभुत्व है। वे जिस ब्राण्ड को खरीदकर उसका उपयोग करती है उसे वे अपनी पहचान का पर्याय मान लेती हैं। इसका उत्पादन की गुणवत्ता या उपयोगिता से कोई सीधा संबंध नहीं होता। निः संदेह आज की महिला में अधिक आत्मविश्वास है। जीवन को अपने ढ़ंग से जीने की प्रबल जिजीविषा है। वह अपनी अपरिहार्य स्थिति से पूरी तरह से अवगत भी है। किन्तु यह भारत की नारियों का एक पक्ष है जिसमें परिवार और पुरुष से स्वतंत्र होने की कोशिश करते हुए स्त्री पूरी तरह बाजार की गिरफ्त में आ चुकी हैं।''[20]''वर्तमान दौर में बाज़ार की चकाचौंध ने स्त्री को इतना लुभाया है कि उपभोक्ता के रूप में स्त्री स्वयं को जितना अधिक स्वतंत्र समझ रही हैं। जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है। स्त्री उपभोक्ता बाजार को निर्देश नहीं दे रही बल्कि यह तो बाजार है जो स्त्री को मनचाहा सामान परोस रहा है। और जिसे भोगने को स्त्री बाध्य है।''[21] प्राचीनकाल से ही नारी की परतंत्रता को ही उसकी सबसे बड़ी विडम्बना माना गया है। और नारीवादी समस्त आंदोलन नारी मुक्ति की धुरी पर केन्द्रित बने रहे किन्तु बहुत हद तक पुरुष वर्चस्व और पारिवारिक जकड़बंदियों से मुक्त होने के बावजूद वह उपभोक्तावाद तथा बाजारवाद की गिरफ्त में आ चुकी है। यह एक चिंतनीय परिणति है जिस पर हमें परम्परा और आधुनिकता के सारे परिप्रेक्ष्यों के साथ विचार करना होगा। दूसरी ओर हमें सुदूर गाँव की उन निर्धन महिलाओं को भी ध्यान में रखना होगा जो गरीबी, अशिक्षा, तथा भूख को झेलने के साथ–साथ पुरुष वर्चस्व की कोख से जन्मे अत्याचारों को भी झेल रही हैं। अभी नारी मुक्ति की पहली किरण तक वहां नहीं पहुँची। बिना इन दोनो पक्षो में संतुलन तथा सामंजस्य बिठाये– दोनों में संवाद कायम किए बिना हम नारी की स्थिति को सकारात्मक रूप में निर्धारित नहीं कर सकते। यही भविष्य का यक्ष प्रश्न है जिस पर राष्ट्र और समाज को विचार करना है। सच तो यह है कि बाज़ार ने स्त्री को आत्म मुग्धता दी है और एक निर्धन और अशिक्षित नारी को समाज के हाशिये पर ढुकेल दिया है। यह दोनो ही स्थितियां भयावह हैं। बाजार हमें लुभाता हो यहां तक तो ठीक है लेकिन अगर वह हमें अपने सम्मोहन में कैद कर ले यह चिन्तनीय है। ''अपने चेहरे को आईने में देखना किसे अच्छा नहीं लगता? पर इसका मतलब यह नहीं कि हम आत्मछवि के शिकार हो जाएं। हाँ, थोड़ा बहुत गरूर आवश्यक है यह हमे जिंदगी जीने में मदद करता है। ऐसी उपभोक्ता संस्कृति से स्त्री को लगाव महसूस करना गलत नहीं। मगर जो संस्कृति बार–बार यह संदेश दे रही हो कि अपने को प्यार करो, अपने पर खर्च करो और अब खर्च करते हुए स्वयं को अपराधी मत महसूस करो, इस संदेश को आत्मसात करना गलत होगा। अन्ततः उपभोक्तावाद स्त्री को जिंस मे बदल देगा।''[22]

उद्देश्य

1. नारी अस्मिता के संघर्ष के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के साथ–साथ समकालीन पक्ष पर विचार करना।
2. वैश्वीकरण के इस दौर में नारी की बदलती हुयी भूमिकाओं पर चिंतन करना।
3. नारी अस्मिता के इस संघर्ष में सार्थक दिशा की तलाश करना।

निष्कर्ष

यहाँ तक हमने प्राचीनकाल से लेकर आज तक नारी की दशा और दिशा का विहंगावलोकन किया। यह पितृसत्तात्मक व्यवस्था के जंगल से लेकर बाजार के आकर्षक मायाजाल तक की यात्रा थी और इसमें नारी ने पुरुष की अधीनता से लेकर पुरुष के प्रति विद्रोह तक की यात्रा तय की है। किन्तु उसका मुक्ति का आंदोलन बीच में ही पसरकर रह गया है। बाज़ार के सम्मोहन की शिकार नारी आत्ममुग्धता की जकड़बंदी में अपनी वास्तविक मुक्ति से विमुख हो चुकी है। वह पहले पुरुष और परिवार के अधीन थी अब बाजार के अधीन है। दरअसल यदि हमें नारी मुक्ति के वास्तविक उद्देश्यों को प्राप्त करना है तो हमे हाशिये पर खड़े महिला समाज को भी शिक्षा ओर रोजगार के हथियारो से लैस करना होगा। दोनों वर्गों के बीच सार्थक संवाद की पहल करनी होगी तभी नारी की नियति को मुक्ति के सुनहरे अक्षरों से लिखा जा सकेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *तंवर कृष्णा; ''स्त्री विमर्श वैचारिक सरोकार और मृदुला गर्ग के उपन्यास'' पृ0 –19*
2. *Metcalf Jonathan and Thempson Della ; Oxford Dictionary Ed, Page 292.*
3. *Procter Paul; Cambridge International Dictionary Ed, Page 512*
4. *अनामिका;''स्त्री मुक्ति : सांझा चूल्हा,'' पृ0 71–72।*
5. *मनुस्मृति, सं0 भागवतुला सुब्रह्मण्यम, पृ0 226।*
6. *वृद्धारण्यक उपनिषद तृतीय 6–8*
7. *दुबे अभय कुमार औरत : उत्तरकथा आलेख– ''पार्टी के हाशिये से क्रांति की चौखट तक कॉम्युनिस्ट आंदोलनों में स्त्री,'' पृ0 211*
8. *राजे सुमन; उद्धृत''हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास'' पृ0 25–26*

9. *चतुर्वेदी जगदीश्वर एवं सिंह सुधा ; ''स्त्री काव्यधारा'' पृ0 46*
10. *शभुंनाथ ; ''सामाजिक क्रांति के दस्तावेज'', पृ0 15*
11. *वही, पृ0 22*
12. *वही , पृ0 101*
13. *डा0 मु0ब0 शाहा;''भारतीय क्रांति के जनक महात्मा फुले'', पृ0 58*
14. *पंडिता रमा बाई; ''हिन्दु स्त्री का जीवन,'' अनुवादक शंभूजोशी पृ0 16*
15. *वोल्सटन क्राफ्ट मेरी; ''स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन'' पृ019*
16. *जॉन स्टुअर्ट मिल; ''स्त्रियों की पराधीनता'' : पृ0 46*
17. *राजे सुमन उद्धृत ''हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास,'' पृ0 25–26*
18. *वही; पृ0 117*
19. *वही; पृ0 121*
20. *वही; पृ0 183*
21. *वही; 218*
22. *वही; 238*